परिवार-सुख कैसे ?

लेखिका
डॉ० रागिणी प्रेम (एम० डी०)

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१

परिवार-सुख कैसे ?

●

लेखिका :

डॉ० रागिणी प्रेम (एम० डी०)

●

संशोधित संस्करण : दूसरा

प्रतियाँ : ४,०००

जनवरी, २००२

●

प्रकाशक :

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१

●

अक्षर संयोजन :

आर० के० कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर

सर्व सेवा संघ परिसर,

राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१

●

मुद्रक :

मित्तल आफसेट

सुन्दरपुर, वाराणसी

●

मूल्य : आठ रुपये

PARIVAR SUKH KAISE ?

●

Writer

Dr. Ragini Prem (M. D.)

●

Price : Rs. 8/-

दो शब्द

ब्रह्मचर्य, गृहस्थी और वानप्रस्थ के विचारों को अपनाने से 'परिवार-नियोजन' विचार के तीनों अंगों की पूर्ति होती है। वंश चलता है, सबके भरण-पोषण की व्यवस्था होती है और इन दोनों कामों को अच्छी तरह निभाने की विद्या सीखने की व्यवस्था होती है। समाज के प्रति कर्तव्यों के विषय में जागरूकता भी इस शिक्षा का अविभाज्य अंग होने के कारण परिवार-कल्याण के साथ-साथ समाज-कल्याण भी सहज सम्पन्न होता है।

—लेखिका

परिवार-सुख कैसे ?

'परिवार' की नींव है 'विवाह संस्कार'। यह संस्कार स्त्री और पुरुष के बीच के आकर्षण को संस्कारित करता है। अभिव्यक्ति का अवसर देता है और साथ ही साथ इस आकर्षण के फलस्वरूप पैदा होनेवाले नये जीव के पालन-पोषण की जिम्मेवारी की व्यवस्था भी कर देता है। इस प्रकार 'विवाह-संस्कार' में निहित आनन्द और जिम्मेवारी दोनों की व्यवस्था का विचार ही वास्तव में परिवार-सुख का विचार है।

—डॉ० रागिणी प्रेम

प्रकाशकीय

भारत की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जा ही है। परिणाम-स्वरूप रोजगार के अवसर, अन्न, वस्त्र-उत्पादन, निवास, चिकित्सा-सुविधा की आवश्यकता भी बढ़ रही है। लेकिन आर्थिक विषमता के कारण सबको जीवनावश्यक सुविधाएँ मिल पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण हो, इसके लिए सरकार प्रचार-माध्यमों द्वारा लोगों में जागरूकता पैदा करती रही है। दूसरी ओर जनसंख्या की बेलगाम बढ़ोतरी जारी ही है।

वर्षों से समाज-सेवा के काम में सक्रिय डॉ० रागिणी प्रेम (एम० डी०) ने '**परिवार-सुख कैसे ?**' छोटी-सी पुस्तिका लिखकर समाज और देशहित में उल्लेखनीय योगदान किया है। जनसंख्या की वृद्धि को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, आपने चित्रों के माध्यम से इसकी अनोखी एवं वैज्ञानिक पद्धति बतलायी है। भाषा सरल, सहज तो है ही।

बहन डॉ० रागिणी प्रेम ने सर्व सेवा संघ-प्रकाशन को इस पुस्तिका के प्रकाशन का अवसर देकर गौरवान्वित किया है। हमें पूरा विश्वास है कि सजग दम्पति, खासकर नव दम्पति इस पुस्तिका का अध्ययन कर, इसमें दिये गये सुझावों, नुस्खों और पद्धतियों को अमल में लायेंगे तो अपने परिवार के साथ-साथ देश की इस ज्वलन्त समस्या के निदान में भी सहयोग करेंगे।

—संयोजक

अविनाश चन्द्र,

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१

अनुक्रमणिका

१.	जनसंख्या-नियंत्रण का विचार	७
२.	सरकार का परिवार-नियोजन परिवार-कल्याण कार्यक्रम किसलिए ?	८
३.	सुखी जीवन का विचार	१०
४.	प्रजनन	१५
५.	परिवार-नियोजन	२०
६.	स्थायी गर्भ-निरोध के उपाय	२९

१. जनसंख्या-नियंत्रण का विचार

संतति के सहारे वंश चलता है। परिवार और समाज कायम रहता है। फिर भी समय-समय पर यह सोचने की जरूरत पड़ती है कि वंश चलाने, जाति या समाज को बनाये रखने के लिए परिवार में कितनी नयी संख्या जोड़ना उचित होगा ?

मनुष्य में ही नहीं, सारी जीव सृष्टि में वंश के चलते रहने के लिए नया जीव जन्म लेता है। वनस्पति से प्राणी भिन्न होता है। प्राणियों में मनुष्य का अपना एक विशेष स्थान है। क्या है यह विशेषता ? मनुष्य दो पैरों पर खड़ा है, उसके हाथ हैं जो बुद्धि के सहारे काफी कुछ निर्माण कर सकते हैं। बुद्धि एक बड़ी देन है। उसीके आधार से मनुष्य ने घर-परिवार की योजना की, समाज और राष्ट्र का निर्माण किया। उसी बुद्धि का उपयोग कर चारों तरफ फैली सृष्टि से अपने उपयोग की नाना चीजें प्राप्त कीं और जीवन में सुख और आनन्द प्राप्त किया। उसी बुद्धि का उपयोग अपना परिवार, अपनी गृहस्थी चलाने में वह करता है। उसके अपने परिवार में कितने बालक हों जिनके पालन-पोषण की जिम्मेवारी को वह ठीक से निभा सकता है, इसके विषय में सोचना उसका अपना कर्तव्य है। हर कोई अपने परिवार में सीमित संख्या में ही बच्चे चाहते हैं। ●

२. सरकार का परिवार-नियोजन, परिवार-कल्याण कार्यक्रम किसलिए ?

जैसे गृहस्थ अपने परिवार की देखभाल और खुशहाली के लिए जिम्मेवार होता है, वैसे ही राजा या सरकार अपने समाज की देखभाल और खुशहाली के लिए जिम्मेवार होता है।

आज अपने देश की स्थिति यह है कि जनसंख्या अपने क्रम में तेजी से बढ़ती जा रही है। एक ओर जनसंख्या की बढ़ोतरी के साथ-साथ रोजगार के अवसर, अन्न, वस्त्र-उत्पादन, शिक्षा के अवसर तथा निवास, पानी, चिकित्सा-सुविधा की जरूरत भी बढ़ रही है। दूसरी ओर सूखा, अति वृष्टि, बाहरी आक्रमण की सम्भावना, दुनिया के बाजार की चाल, आदि सारी परिस्थितियों का सामना करते हुए सरकार से समाज-परिवार की खुशहाली की जो व्यवस्था बन पायी है वह अपर्याप्त दिखायी दे रही है। यही परिस्थिति है जिसके कारण राष्ट्र के नेता परिवार के आकार पर यानी परिवार में बच्चों की संख्या पर नियंत्रण करने की बात करते हैं। इस विचार को समझाने और उसके अनुकूल व्यवहार के लिए साधन-सुविधा उपलब्ध कराने के कार्यक्रम को सरकार परिवार-नियोजन, परिवार-कल्याण कार्यक्रम कहती है। और, उसे प्रसारित कर जनसंख्या की बढ़ोतरी पर अंकुश लगाना चाहती है।

निरंकुश बढ़ती हुई आबादी का इलाज निसर्ग के पास है। आपस के झगड़े, युद्ध, महायुद्ध, अकाल आदि के बहाने बड़ी संख्या में आदमी मरते हैं। जीवन अस्त-व्यस्त होता है। परिश्रम से की हुई कमाई, विद्या, धन इत्यादि खो जाते हैं और मनुष्य को जीवन की व्यवस्था जुटाने के लिए फिर से सारा प्रयास करना पड़ता है। भविष्य में आनेवाली ऐसी विपत्तियों की उलझन को टालने के लिए हम लोग सतर्क रहें, योजना बनाकर काम करें, यही विचार परिवार-नियोजन

अभियान के मूल में है। सबकी खुशहाली को सुनिश्चित करना, यही इस कार्यक्रम का लक्ष्य है।

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ

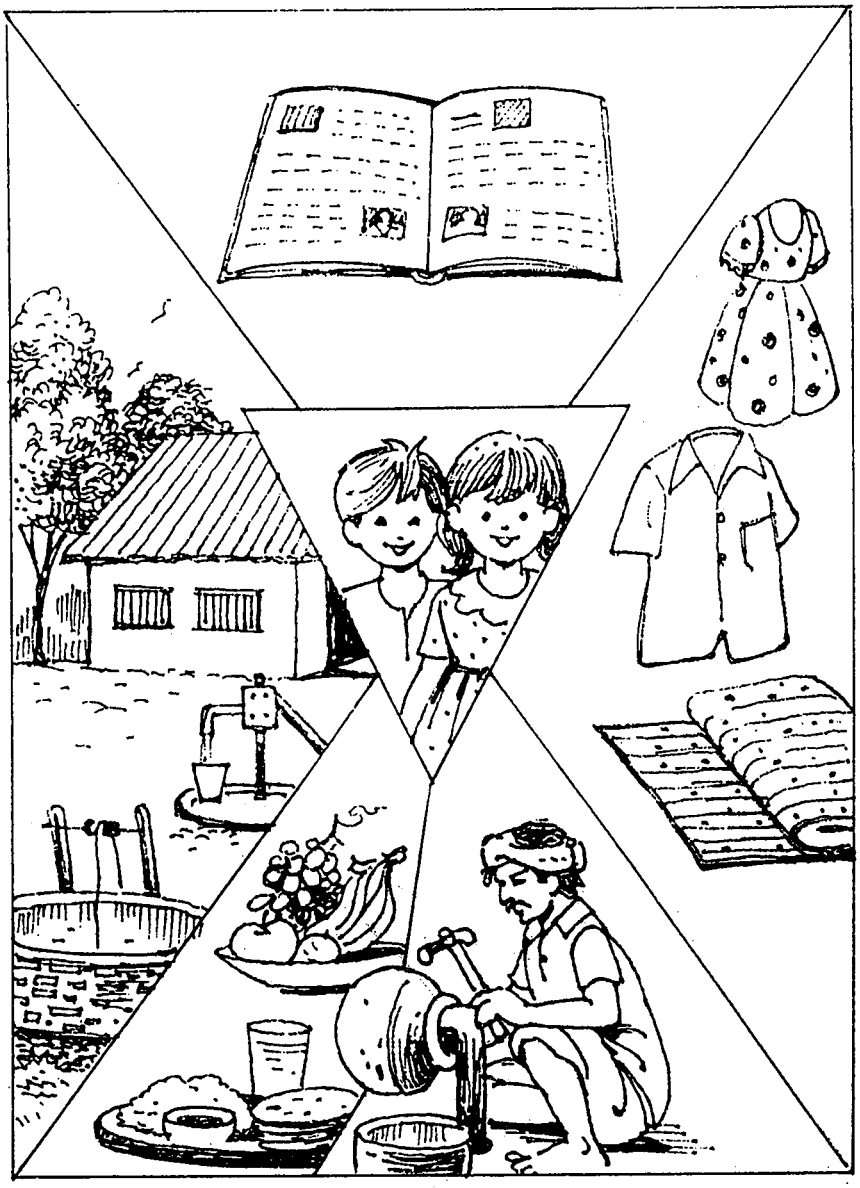

चित्र संख्या १

३. सुखी जीवन का विचार

व्यक्तिगत परिवार छोटा रहेगा, समाज का आकार छोटा रहेगा, देश की जनसंख्या सीमित रहेगी तो जीवन जीने के लिए साधन-सामान की कमी नहीं होगी, यह बात तो सत्य है। मगर जीवन जीने के लिए पर्याप्त साधन मिलने से क्या जीवन में सुख का अनुभव प्राप्त होगा ? यह भी एक सवाल है।

दुनिया में आज ऐसे कई देश हैं जहाँ पर जनसंख्या की बढ़ोतरी रुकी हुई है। कहीं-कहीं पर उसके घटने की आशंका है। इन देशों में सम्पन्नता और वैभव भी पर्याप्त है, फिर भी वहाँ के आम आदमी को सुखी होने का एहसास नहीं होता। ऐसा क्यों ?

भरपूर साधन-सामान और ठाट-बाट को सुख का साधन मानकर शिक्षण, उत्पादन, वितरण, बाजार आदि की व्यवस्था के काम में सरकारें जुट गयीं और प्रजा ने सोचा कि सुख तो घर पहुँच ही रहा है। बड़ी मशीनों से बड़े पैमाने पर वस्तु-उत्पादन कर और उसे महँगे दाम पर गरीब देशों में बेचकर, धन विकसित कर कुछ देशों ने काफी धन कमाया। यह धन तो कुछ थोड़े लोगों के पास अधिक पहुँचा, शेष के पास काफी कम पहुँचा। जिनके पास नहीं पहुँचा उनको सन्तोष दिलाने के लिए सरकार ने अपने ऊपर उनके कल्याण की यानी उनके बाल-बच्चों की पढ़ाई की, बड़े-बूढ़ों की देखभाल की एवं सबकी चिकित्सा इत्यादि की जिम्मेवारी उठा ली। बड़ी मशीनों के कारण या व्यापारनीति के कारण जो लोग बेरोजगार हुए उन्हें बेरोजगारी भत्ता भी वितरित करने लगी। इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक अर्थ में जीवन की आवश्यकताएँ सरकार की व्यवस्था ने पूरी कीं तो दूसरे मायने में आदमी को स्वच्छन्द होने का मौका दिया। बूढ़े माँ-पिता की देखभाल से मुक्ति मिली। परिवार बनाने की आवश्यकता कम

महसूस होने लगी। महिलाओं को लगने लगा, पुरुष घर के बाहर की दुनिया का आनन्द इसलिए ले पाता है कि उसे बच्चा पालना नहीं पड़ता। महिलाओं ने सोचा, कि अगर बच्चा आने ही न दिया जाय तो पुरुष के साथ रहते हुए भी बच्चे को पालने के बंधन से मुक्ति मिलेगी। विचार आगे बढ़ा और यह सूझा कि जितने दिन जिसके साथ बने उतने दिन उसके साथ रहना क्या बुरा है ? शादी कर जीवनभर साथ रहने की बात क्यों ?

पश्चिमी देशों के विवाह सम्बन्धी विचारों से मिलता-जुलता व्यवहार अपने देश के समाज के कुछ घटकों में आज देखने को मिलता है। उसके परिणाम भी देखने को मिलते हैं। परिवार से अलग पड़नेवाले की असहायता का दुखी जीवन, नशा की बेहोशी, कम समय में धनी बनने की इच्छा से चोरी, झगड़े, झंझट, नयी पीढ़ी के जीवन में बढ़ती अस्थिरता, बिगड़ी मानसिकता ऐसे समाजों में देखने को मिलती है। अब सवाल है कि स्वतंत्रता के विचार को इस हद तक अपनाना क्या उचित है ? बीमारी में, बुढ़ापे में तथा जीवन के अन्य कठिन दिनों में व्यक्ति अपने को एकाकी और असहाय महसूस करे ? या परिवार बनाकर अपनी स्वतंत्रता को थोड़ा सीमित कर दूसरे के लिए थोड़ा कष्ट उठाये जिससे जीवन में प्रेम, आदर, सहयोग प्राप्त हो सके ?

सम्पन्न देशों के लोगों का मन आज आतंकित भी है। उन्होंने मुनाफाखोरी और मनमानी की, अपने लिए अपने पास-पड़ोस की निसर्ग-सम्पदा का मनमाना दोहन किया। गन्दगी फैलायी, नतीजा यह हुआ कि निकट भविष्य में अब साँस लेने के लिए हवा की कमी का संकट उन्हें दिखायी दे रहा है। नदियों, समुद्रों में उन्होंने बड़े-बड़े कल-कारखानों से निकली गन्दगी डाली जिससे पानी को शुद्ध करनेवाली वनस्पति और मछली मर गयी। रासायनिक गन्दगी के कारण पानी भी विषाक्त हो गया। उनके मानसिक आतंक का एक और कारण है—वैभव और सत्ता की होड़ में अन्य देशों से मोल लिया वैर। वैर के चलते मन में बैठे भय ने युद्ध की सम्भावना को देखते

हुए हथियार को इस हद तक बढ़ाया है कि रक्षा के लिए बने आणुविक हथियारों के उत्पादन और भण्डारण से खतरे को निमंत्रण दे दिया।

जीवन में स्वच्छंदता, वैभव बढ़ाने के विचार और व्यवहार को विकास कहा जा रहा है। मगर दूर दृष्टि से देखा जाय और दूसरों के अनुभव से सीखा जाय तो विकास की यह दिशा गलत लगती है। अगर यह विचार गलत हैं तो सही कौन-सा है ?

ऐसा लगता है कि स्त्री-पुरुष के बीच का आकर्षण, वंश चलाने का कार्य, जीवन जीने हेतु जीवन में आनेवाली कठिनाइयों का सामना करने में बल देनेवाले प्रेम और सहयोग के रिश्ते के महत्त्व को समझकर हमारे पूर्वजों ने 'विवाह' और 'परिवार' व्यवस्था की खोज की। इसीके आगे का चरण है—ग्राम-परिवार। 'विवाह' ने स्त्री-पुरुष की जोड़ी को आपस में एक-दूसरे के प्रति विश्वास और निष्ठा के साथ जीने की प्रेरणा दी। 'परिवार' की कल्पना ने दो-तीन पीढ़ियों के बीच आपसी सौहार्द और सहयोग से जीना सिखाया। ग्राम-परिवार की सोच ने जीवन को समृद्ध करने का रास्ता दिखाया। इस व्यवस्था में व्यक्ति को एक-दूसरे के गुणदोष को निभाने का कष्ट उठाना पड़ता है। त्याग करना पड़ता है, कुछ तपस्या करनी पड़ती है। मगर उसके बदले में मिलता है प्रेम, आदर, प्रोत्साहन, सहयोग और सहारा। मानसिक सुख के यही आधार हैं। आज वैभवशाली पश्चिम के देशों में लोगों के मानसिक सुख का आधार कुछ टूट रहा है, कुछ टूटा है और इसलिए सब कुछ भरपूर होते हुए भी वे दुखी हैं।

परिवार और समाज के सुख के लिए हमारे देश के बुजुर्गों ने एक बहुत अच्छा व्यवहार बतलाया है। इस विचार में जीवन को आश्रम कहा गया है। एक पवित्र अवसर माना गया है। बाल्यावस्था समाप्त होने के बाद के जीवन को चार हिस्सों में बाँटा है। एक, ब्रह्मचर्य-आश्रम, दूसरा, गृहस्थ-आश्रम, तीसरा, वानप्रस्थ-आश्रम और चौथा, संन्यास-आश्रम। परिवार-कल्याण के सन्दर्भ में पहले तीन आश्रमों का महत्त्व है।

ब्रह्मचर्य-आश्रम में यह माना गया है कि व्यक्ति मन की पूरी एकाग्रता के साथ शरीर और बुद्धि के सहारे अपने परिसर, परिस्थिति के विषय में ज्ञान प्राप्त करेगा और साथ ही जीवन जीने की कला प्राप्त करेगा। गुरु, परिवार तथा समाज और सृष्टि के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझेगा और आवश्यक मानवीय गुणों को ग्रहण (आत्मसात्) करेगा।

जीवन जीने के लिए आवश्यक ज्ञानप्राप्ति के बाद स्त्री-पुरुष विवाह कर सहयोगी जीवन की शुरुआत करते हैं। अपनी गृहस्थी बसाते हैं। जिम्मेवारी उठाते हैं। ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रयोग से उनका अपना विश्वास बढ़ता है। मनुष्य स्वभाव और जीवन-सम्बन्धी नये ज्ञान से उनकी समझदारी बढ़ती है। और साथ-साथ सुख भी बढ़ता है। यही गृहस्थ-आश्रम है। इस गृहस्थ-आश्रम में दोनों अपनी सामाजिक जिम्मेवारी को भी निभाते हैं। बच्चे, बड़े, बूढ़े, बीमार आदि की सेवा, पालन-पोषण करते हैं। जानवर, पेड़-पौधों और पानी के स्रोत आदि की सुरक्षा की भी चिन्ता करते हैं, और समाज पर आनेवाले संकटों का मिलजुल कर सामना भी करते हैं।

वानप्रस्थ-आश्रम की शुरुआत अगली पीढ़ी के गृहस्थाश्रम प्रवेश से होती है। इसमें प्रत्यक्ष दैनन्दिन कार्य की जिम्मेवारी नयी पीढ़ी को सौंपना तथा उनका मार्गदर्शन और उत्साहवर्धन करते रहने के साथ-साथ सहयोगी की भूमिका निभानी होती है। पुरानी पीढ़ी के लिए मुखियापन छोड़ना, और नयी पीढ़ी के लिए मतभेद के बावजूद पुरानी पीढ़ी का आदर करना, आसान काम नहीं है। इस कठिनाई के कारण सम्पन्न देशों में और सम्पन्न समाज में दोनों पीढ़ियाँ, खासकर पढ़े-लिखे लोगों की, आज अलग-अलग रहना चाहती हैं।

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी अलग-अलग रहेगी तो क्या नुकसान होगा, इसका चित्र आज विकसित यानी सम्पन्न देशों में अच्छी तरह देखने को मिलता है। इस अलगाव की पृथक् व्यवस्था से मनुष्य को अपना बुढ़ापा दुखदायी प्रतीत होता है। और तरुणों को जीवन की उलझनों का सामना करने में निराशा का अनुभव होता है। बच्चों को

जीवन में लाड़-प्यार, प्रोत्साहन का अभाव खलता है और खोयापन का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत अगर दो पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं तो दोनों को जीवन में आनन्द आ सकता है। इतना जरूर है कि इस प्रकार की व्यवस्था को निभाने में सहिष्णुता की यानी मेल से रहने की मन की तैयारी जरूरी होती है। मनुष्य को सुख देनेवाली मानवीय गुणों को प्राप्त करने का, उनका विकास करने का मौका संयुक्त (एकत्र) परिवार में ही अधिक मिलता है। व्यक्ति के जीवन में इन गुणों के विकास से समाज का भी भला होता है।

संयुक्त परिवार में बच्चों की व्यवस्था भी अच्छी होती है। बड़े-बूढ़ों के पास ज्ञान होता है, समय होता है और धैर्य भी होता है। बच्चे के पालन में इन्हीं सब चीजों की आवश्यकता होती है।

भारत देश के बुजुर्गों की परिवार सम्बन्धी सिखावन सुखी जीवन की चाबी है। ●

४. प्रजनन

अपने जैसे जीव के पुनर्निर्माण के कार्य को प्रजनन (अपने जैसी प्रजा का निर्माण) कहा जाता है। इस प्रजनन-कार्य की एक विशेषता यह है कि उसमें स्त्री-पुरुष दोनों के योगदान की आवश्यकता रहती है। स्त्री और पुरुष के शरीर में प्रजनन-कार्य की व्यवस्था तो जन्म के समय से बनी रहती है, मगर यह व्यवस्था सक्षम बनती है जन्म के एक निश्चित समय के बाद। पहले शरीर की अन्य व्यवस्थाएँ बुद्धि, श्वसन, पाचन आदि, अपना विकास कर सक्षम हो जाती हैं, उसके बाद यानी करीब बारह वर्ष की आयु में प्रजनन की इन्द्रियों का विकास चालू होता है। स्त्री-शरीर और पुरुष-शरीर की अपनी-अपनी विशेषताएँ दिखायी देने लगती हैं। जीवन की इस अवस्था को 'किशोर-अवस्था' कहा जाता है। किशोर-अवस्था में सिर्फ शरीर में ही अन्तर नहीं आता। मन के भावों में भी परिवर्तन होता है। किशोर लड़के-लड़कियों को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का भान होने लगता है, कुछ करने की, असाध्य काम को साध्य कर दिखाने की प्रेरणा जगती है और साथ ही साथ अपने ऊपर का विश्वास जागता है। इसी समय लड़का और लड़की के मन में एक-दूसरे के प्रति संकोच के साथ-साथ आकर्षण बढ़ता है। एक अर्थ में गृहस्थधर्म (परिवार का सार-सम्भाल) और प्रजनन की जिम्मेवारी को सम्भाल सकने की पूर्व तैयारी लड़कियों में १६-१८ वर्ष की आयु में और लड़कों में २२-२४ वर्ष में पूरी हो जाती है।

किशोर-अवस्था में शरीर में दिखायी पड़नेवाले परिवर्तन शरीर में बननेवाले रसों के प्रभाव के कारण होते हैं। मस्तिष्क में स्थित एक छोटी ग्रंथि पिच्युटरी शरीर के विकास-कार्य का नियंत्रण करती है। इसीके विशिष्ट रस द्वारा भेजी प्रेरणा पुरुषों के अण्डकोश और स्त्री

के अण्डाशय को अपना कार्य करने के लिए आदेश देती है, प्रवृत्त करती है।

अण्डकोश और अण्डाशय दो काम करते हैं। उनका एक काम है बीज तैयार करना और दूसरा काम है प्रजनन के कार्य में सहायता के लिए रस (हार्मोन) बनाना। अण्डकोश और अण्डाशय में जो बीज बनते हैं वे अपने में अपूर्ण होते हैं। एक-दूसरे से मिलकर जब वे एकरूप हो जाते हैं तो वह नया रूप 'भ्रूण' कहलाता है। (भ्रूण) में स्वयं विकास की क्षमता होती है। मूल में एक कण के रूप का भ्रूण पाँच माह में मनुष्यरूप प्राप्त कर लेता है, और जब नौ माह में श्वसन, पाचन, रक्त-अभिसरण, मलमूत्र-विसर्जन आदि की क्षमताएँ प्राप्त कर लेता है तब बाहरी दुनिया में जन्म लेता है।

पुरुष शरीर में प्रजनन-व्यवस्था

पुरुष जननेन्द्रिय

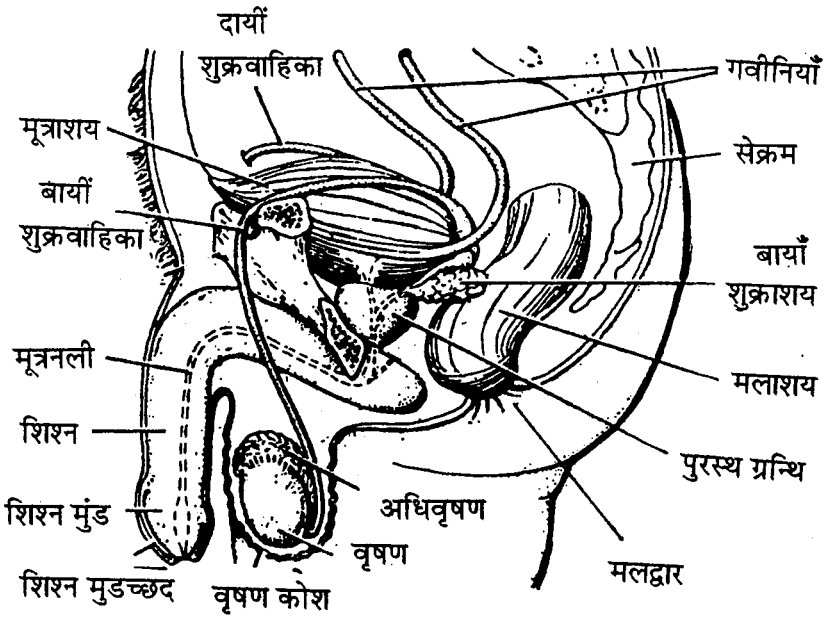

चित्र संख्या २

दोनों अण्डकोशों (वृषण/टेस्टिस) में शुक्राणु (स्पर्मेटोझुआ) बनते रहते हैं। तैयार शुक्राणु अण्डकोश के साथ सटे अधिवृषण (एपिडियामिस) में पहुँचते हैं। कुछ समय तक यहाँ रुक कर शक्ति पाते हैं और फिर शुक्रवाहक (वास डेफेरेन्स) नली मार्ग से आगे बढ़ते हैं। शुक्रवाहक नली पेट की दीवार से होते हुए कमर की हड्डी के खोखले (श्रेणी) में (पेल्विक केविटी) प्रवेश कर मूत्रवाहिनी (यूरेथरा) में खुलती है। यहाँ पर दो अन्य सहायक रचनाएँ हैं जो शुक्राणुओं की मदद करती हैं। एक रचना का नाम है शुक्राशय (सोमिनल वेसिकल्स), जो पेशाब की थैली (मूत्राशय/यूरिनीरी ब्लैडर) के पीछे दोनों तरफ एक-एक होती है। मूत्राशय के नीचे दूसरी रचना है पुरस्थ (प्रोस्टेट) ग्रंथि। यह गाँठ-सी ग्रंथि मूत्र नली के शुरू के हिस्से को चारों तरफ घेरे रहती है।

समय-समय पर तैयार हुए शुक्राणु शुक्रवाहक नली के अन्तिम हिस्से में आकर जमा रहते हैं। यहाँ पर पुष्ट होते हैं और उत्तेजना के समय शुक्राशय और पुरस्थ ग्रंथि के स्रावों के साथ मूत्रमार्ग में पहुँचते हैं। शुक्राणु तो अत्यन्त सूक्ष्म कण है। स्राव, द्रव, ये बहनेवाले होते हैं। स्राव और शुक्राणु के मिले-जुले द्रव को वीर्य (सीमेन) कहते हैं। अनुकूल स्थान पर गिरे वीर्य में शुक्राणु २८ से ४८ घण्टे जीवित रहते हैं। मगर शुक्रवाहक नली के अन्तिम भाग में उनकी जीवनी-शक्ति एक-दो माह तक रहती है। और इसलिए पुरुष द्वारा परिवार-नियोजन ऑपरेशन कराये जाने के बाद दो माह तक परहेज आवश्यक रहता है।

वृषण में जो एक रस (हार्मोन) बनकर सीधे रक्त में मिल जाता है उसे टेस्टोस्टरोन कहते हैं। शुक्राणु का निर्माण तथा दाढ़ी-मूँछ आदि पुरुष-वैशिष्ट्य इसी रस के सहारे से होता है।

स्त्री-शरीर में प्रजनन-कार्य-व्यवस्था

रजकण बनने का काम सतत होता रहता है। मगर दोनों अण्डाशयों में से किसी एक में ही एक माह में एक रजकण तैयार होता है और

दिम्बवाहक नली (रजकणवाहक नली मार्ग) से गर्भाशय की ओर आगे बढ़ता है। तैयार होने के बाद रजकण २४ घण्टे तक ही जीता है। इसी अवधि में शुक्राणु से वह मिल पाया तो 'भ्रूण' बनता है।

स्त्री जननेन्द्रिय

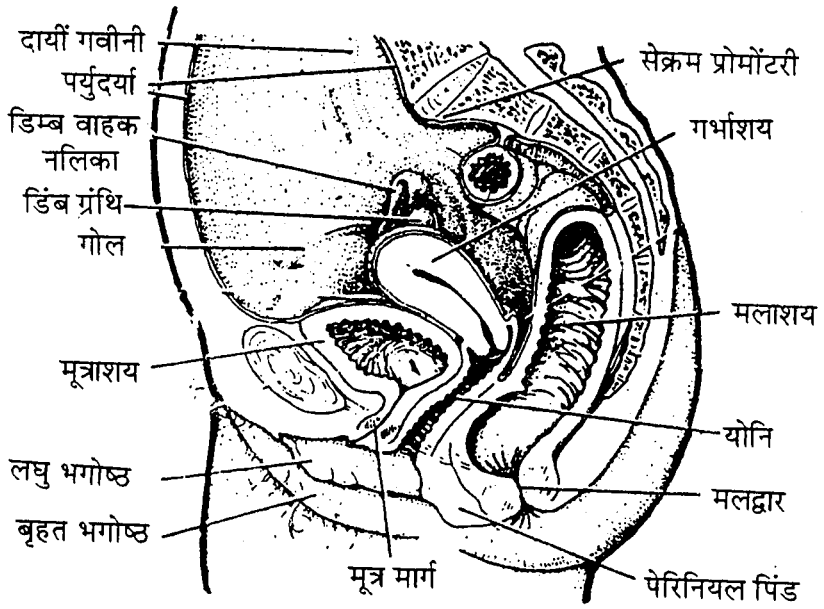

चित्र संख्या ३

शुक्राणु और रजकण के मिलने से बना भ्रूण (गर्भ) तुरन्त अपने विकास का काम चालू करता है। मगर उसके अपने पास सीमित आहार होता है और इसलिए उसे वहाँ (गर्भाशय में) पहुँचना होता है जहाँ पर उसके पालन-पोषण और सुरक्षा की व्यवस्था रहती है।

रजकण तैयार करने के साथ-साथ अण्डाशय में दो तरह के रस इस्ट्रोजन व प्रोजेस्टशॅन तैयार होते हैं जो रक्त द्वारा गर्भाशय में पहुँचकर उसकी दीवार में भ्रूण (गर्भ) के स्वागत की तैयारी में एक गुदगुदा गद्दा-सा तैयार करते हैं। गर्भाशय में भ्रूण न पहुँचा तो उसके स्वागत में बने गद्दे को व्यर्थ मानकर शरीर उसे मासिक रक्तस्राव के रूप में योनिमार्ग से शरीर के बाहर निकाल देता है और नये रजकण के तैयार होने की सूचना मिलने पर पुनः नये भ्रूण के स्वागत की तैयारी

करने लगता है। ऐसा प्रति माह होता है। इसलिए इसे 'मासिक धर्म' कहते हैं। अण्डाशय में बने रस रक्त द्वारा गर्भाशय में पहुँचने के साथ-साथ पूरे शरीर में घूमते हैं। स्त्री-शरीर का वैशिष्ट्य उन्हीं के आधार पर रहता है।

जब रजकण का रूपान्तरण भ्रूण में होता है और गर्भाशय में उसका विकास होने लगता है तब अण्डाशय में नये रजकण नहीं बनते। यह व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। प्रसूति के बाद गर्भाशय खाली हो जाता है। गर्भावस्था में रक्त में बढ़ी इस्ट्रोजेन प्रोजेस्टरेन रसों की मात्रा भी घट जाती है। जिससे शरीर को पता चलता है कि अब नये गर्भ के लिए जगह खाली है। प्रसूति के बाद पुनः रजकण बनने की प्रक्रिया कब चालू होगी इसका अन्दाज लगाना असम्भव है। योनि से होनेवाला रक्तस्राव तो सिर्फ इतना ही बताता है कि रजकण बनना चालू हुआ और उसका रूपान्तर गर्भ में नहीं हुआ। अगर ऐसी सूचना मिलने तक पति-पत्नी परहेज से रहें तब तो वे अगले बच्चे के जन्म की योजना सफलता से बना सकते हैं अन्यथा एक और बच्चा आ जाता है।

वंश को चालू रखने के लिए रची गयी यह प्रजनन की व्यवस्था जटिल तो है मगर बहुत ढंग से आयोजित है। बात बहुत स्पष्ट है। शरीर की रचना व कार्य-व्यवस्था में स्वास्थ्य-रक्षा का प्रावधान है बशर्ते कि मनुष्य सोच-समझकर अपने व्यवहार को ढाले। ●

५. परिवार-नियोजन

युवावस्था में प्रवेश करने के साथ-साथ दो कार्यों के विषय में हरएक को सोचना होता है। एक है जीविका के लिए कौन-सा काम करना, इसके विषय की सोच। और, दूसरा है अपने जीवन साथी के विषय में, यानी विवाह के विषय की सोच। परिवार बसाने के विचार के साथ ही परिवार की योजना यानी परिवार-नियोजन शुरू होता है।

युवावस्था में विवाह होने पर पति-पत्नी और इनके घरवाले के मन में बच्चे के जल्दी आगमन की अपेक्षा रहती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि पति-पत्नी सोचते हैं कि बच्चा कुछ देर में आये तो अच्छा। बच्चे को जल्दी या देर में बुलाने के विषय में सोचते समय पत्नी की उम्र के विषय में सोचना जरूरी है। छोटी उम्र में यानी १३ से १५ वर्ष की आयु में या बड़ी उम्र में यानी २५-२६ वर्ष के बाद अगर स्त्री गर्भवती होती है तो गर्भावस्था तथा प्रसूति, दोनों में अधिक कष्ट और कठिनाई की सम्भावना रहती है। छोटी उम्र में शरीर और जानेन्द्रियों के विकास में अधूरेपन के कारण, और बड़ी उम्र में शरीर तथा कमर की हड्डी के कम लचीले होने के कारण ऐसा होता है। इसलिए सही उम्र में तथा बड़ी उम्र में विवाह होने के बाद अपने समय से बच्चा हो यही ठीक होता है।

प्रथम बच्चे के आगमन के बाद दूसरे बच्चे का आगमन कब हो इसकी योजना बनाते समय दो मुद्दों पर विचार करना आवश्यक है। पहला और दूसरा बच्चा इनकी आपस में एक जोड़ी बने, वे आपस में घुलमिल सकें, खेल सकें इतना ही अन्तर उनमें होना चाहिए। इससे अधिक अन्तर होगा तो उनके आकर्षण-केन्द्र, खेल और बौद्धिक स्तर इनमें ज्यादा अन्तर हो जाता है और फिर उनको एक-दूसरे का साथीपन नहीं मिल पाता। मित्रता नहीं बनती। दो बच्चों के बीच २ से ३ वर्ष

का अन्तर ठीक रहता है। आजकल पढ़े-लिखे वर्ग में दूसरे बच्चे के आगमन को पूर्णरूप से टालने का भी कुछ लोग सोचते हैं। यह विचार भी उतना ठीक नहीं है। कारण परिवार संयुक्त न हो तो बच्चा अकेलापन महसूस करता है। उसे जो चाहे वह मिलता है। बाँटना नहीं पड़ता है। दूसरे के स्वभाव से मेल करना, हार मान लेना, दूसरे का मन रखने के लिए अपनी बात छोड़ना आदि गुणों का विकास करने का कम मौका मिल पाता है। व्यक्तित्व के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है।

दूसरे बच्चे की योजना न बनायी और उसके लिए सावधानी न रखी तो दूसरा बच्चा पहले बच्चे की आयु एक वर्ष की होने के पहले भी आ सकता है। ऐसा जब कभी हो जाता है तब पहले बच्चे के स्वास्थ्य पर उसका गलत परिणाम होता है। उसे माँ का दूध कम मिल पाता है और शरीर कमजोर होता है। माँ का ध्यान दूसरे बच्चे में बँट जाने के कारण उसे माँ का सहवास और प्रेम कम मिल पाता है। उसके मन में असन्तोष रहता है। बच्चा अपना असन्तोष अपने ढंग से व्यक्त करता है। असन्तोष के मूल कारण का पता आसानी से बड़ों को चलता नहीं और एक उलझन-सी पैदा हो जाती है। दूसरे बच्चे का जल्दी आगमन माँ के लिए भी अच्छा नहीं होता। कारण प्रसव अवस्था में शरीर में आयी कमजोरी और थकावट को ठीक होने का मौका मिलता नहीं, और ऊपर से दो छोटे बच्चों को सम्भालने की उलझन से भी गुजरना पड़ता है।

अगर दूसरा बच्चा जल्दी आता है तो माँ को पोषक आहार मिले, आराम मिले, इसकी चिन्ता विशेष करनी चाहिए। पहले बच्चे की देखभाल के लिए परिवार के अन्य सदस्यों को समय देना चाहिए और पहले बच्चे के साथ विशेष मैत्री करनी चाहिए, जिससे उसके मन में उदासी न बढ़े। दूसरे बच्चे के आगमन में ज्यादा देर हुई तो पहले बच्चे को हमउम्र बच्चों के साथ रहने-खेलने के अधिकाधिक अवसर मिले, इसके लिए प्रयत्न होना चाहिए। इस खास चिन्ता को भी परिवार-नियोजन का ही एक अंग मान लेना चाहिए।

दूसरे बच्चे के आगमन के बाद तीसरे के आगमन के विषय में सोचना चाहिए और किसी कारण से बुलाने का विचार हो तो दूसरे और तीसरे के बीच वही ढाई-तीन वर्ष का अन्तर होना चाहिए।

वर्तमान में देश के सामने जनसंख्या में अधिक बढ़ोतरी की समस्या है। इस समस्या को समझकर परिवार में दो से अधिक बच्चे न बुलाना

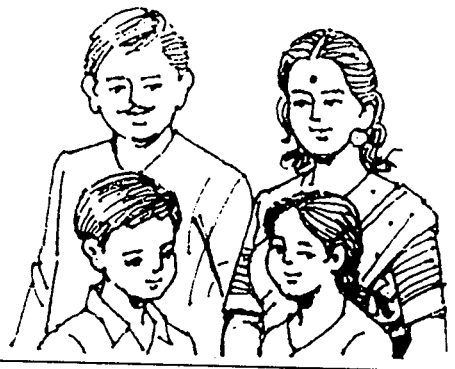	**सन्तोष है** एक लड़का एक लड़की
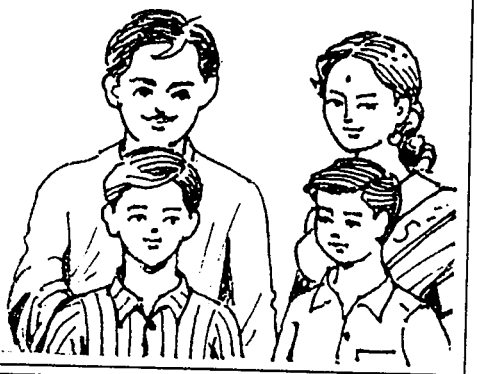	**सन्तोष है** दो लड़का
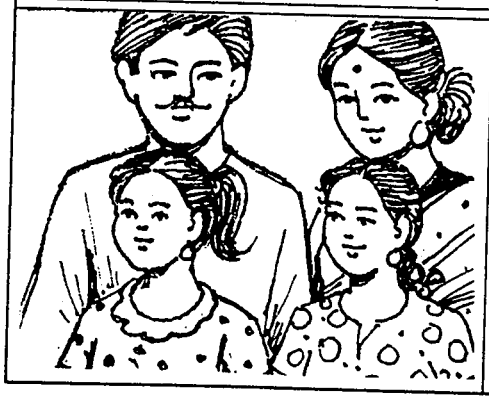	**सन्तोष है** दो लड़की

चित्र संख्या ४

ही ठीक है। लड़का व लड़की दोनों का मन समान है। वंश दोनों चलाते हैं और बुढ़ापे में जैसे लड़का सहारा बन सकता है वैसे लड़की भी बन सकती है।

परिवार में बच्चों की कुल संख्या और उनके आगमन के समय के विषय में निर्णय करने के बाद विचार के अनुकूल आचरण का मुद्दा उठता है। जितने दिन बच्चा नहीं चाहिए उतने दिनों तक पति-पत्नी पूर्णरूप से सहवास टालें, इसमें कठिनाई है। इस कठिनाई को हल करने की दृष्टि से संतति-नियमन की पद्धतियों की खोज बहुत पहले से जारी है।

संतति-नियमन की पद्धतियों का उपयोग दो बच्चों के बीच का अन्तर तय करने के लिए और आगे पूर्ण रोक के लिए भी किया जा सकता है। ऑपरेशन-पद्धति तब अपनानी चाहिए जब दम्पति की इच्छा के अनुरूप बच्चे परिवार में आ गये हों और दम्पति की उम्र भी कुछ बड़ी हो गयी हो।

अस्थायी गर्भ-नियमन के उपाय नीचे दिये अनुसार हैं :

१. संयम
२. योनि में वीर्य के गिरने पर रोक
३. गर्भाशय की गर्भधारण की क्षमता में अवरोध
४. रजकणों के बनने पर रोक

१. संयम

देहात के बड़े-बुजुर्गों से बात करने पर पता चलता है कि एक बच्चे के जन्म के बाद उसके स्वावलम्बी होने तक (दो वर्ष तक) पूर्ण संयम से रहने का प्रयत्न रहा है। इसी तरह पहला बच्चा किशोरावस्था में आ जाने के बाद पूर्ण रोक के लिए भी संयम अपनाया गया है। घर के कुछ रीतिरिवाज ऐसे बनाये गये कि संयम करने में मदद मिले। अपनी इच्छा-वासना की पूर्ति में विवेक और संयम दम्पति के जीवन को सुखी बनाते हैं।

जैसा पहले बताया गया है कि स्त्री के शरीर में प्रति माह एक ही रजकण तैयार होता है और वह २४ घण्टे से ४८ घण्टे तक जीवित

परिवार नियोजन के संदर्भ में

सुरक्षित कालचक्र

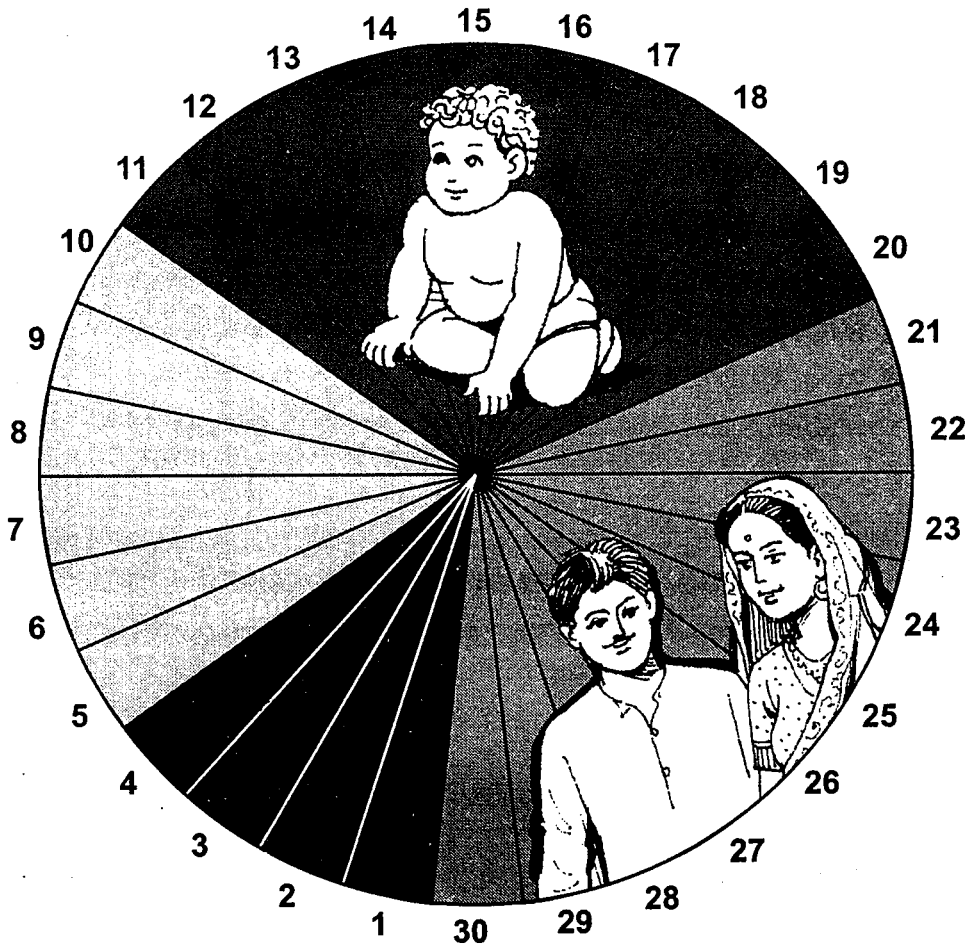

- ४ दिन माहवारी के होते हैं
- इन दिनों में बच्चा रहता है।
- बच्चा रहने की तैयारी के समय हैं
- इन दिनों बच्चा नहीं रहता है, तब २८ या ३० दिनों में माहवारी नियमित आता है।

चित्र संख्या ५

रहता है। रजकण तैयार होने पर अगर गर्भ में उसका रूपान्तर नहीं हुआ तो १४ दिन बाद मासिक रक्तस्राव दिखायी पड़ता है। मतलब यह हुआ कि अगर रजकण के तैयार होने के समय संयम बरता जाय, एक-दूसरे से दूर रहा जाय तो रजकण का शुक्राणु से मिलन नहीं होगा, भ्रूण नहीं बनेगा, बच्चा नहीं आयेगा। अब सवाल यह उठता है कि रजकण बनने के समय का पता कैसे लगायें ? मासिक रक्तस्राव नियमित रूप से जब २८-३० दिनों में आता है तब अगले मासिक के १४ दिन पहले यानी माह के मध्य में यानी पहली बार का मासिक रक्तस्राव दिखायी देने के १४वें १६वें दिन रजकण तैयार होकर अण्डाशय से बाहर निकलता है। इसके आगे-पीछे दो-दो दिन अगर योनि में वीर्य नहीं पड़ेगा तो शुक्राणु और रजकण का मिलना और भ्रूण का बनना टल सकता है। एक बात यह है कि रजकण ४८ घण्टे और शुक्राणु २४ घण्टे जीवित रहते हैं। इसलिए रजकण के तैयार होने के पहले का एक दिन और बाद के दो दिन में योनि में वीर्य नहीं पड़ना चाहिए। यानी कुल तीन दिन परहेज के हुए। आगे होनेवाले मासिक रक्तस्राव का अन्दाज ही किया जा सकता है। कभी उसका समय एक-दो दिन आगे-पीछे भी हो सकता है। इसलिए जिनका मासिक नियमित है उसके मासिक दिखायी देने के दिन से १४वें १६वें दिन रजकण तैयार होगा, ऐसा अनुमान लगाते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से अगर मासिक रक्तस्राव दिखायी पड़ने के दिन से ११वें दिन से २०वें दिन तक पूर्ण संयम रखना दम्पति को सम्भव होगा तो उन्हें गर्भ-निरोध के अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इस संयम विधि को 'सुरक्षित काल' कहा जाता है।

२. योनि में वीर्य के गिरने पर रोक

इस पद्धति में यह ध्यान रखना होता है कि वीर्य निकले इसके पहले दम्पति अलग हो जायँ। दूसरा तरीका है बाजार में मिल रही रबर की टोपी 'निरोध' का पुरुष द्वारा उपयोग। इसमें सावधानी यह रखनी है कि निरोध कमजोर रबर का न बना हो और उसमें कोई छेद

न हो। उसका उपयोग ठीक प्रकार से करें। (इस तरह की एक टोपी (डायग्राम), गर्भाशय के मुँह पर लगाने के लिए, कई वर्ष पहले उपयोग में थी। मगर उसकी कठिनाइयों के कारण अब उसकी चर्चा नहीं है।)

३. गर्भाशय की गर्भधारणा-क्षमता में अवरोध

कुछ वर्ष पहले एक प्लास्टिक का बना घुमावदार आकार का हुक 'लूप' गर्भाशय में रखा जाता था। इस पद्धति से गर्भनिरोध-कार्य विशेष प्रभावी नहीं रहा। एक तो इसके अपने आप निकल जाने का पता नहीं चलता था और गर्भ रह जाता था। कभी 'लूप' गर्भाशय को छेदकर पेट के अन्दर खुला पड़ा रहता था और लूप के कारण अक्सर अधिक रक्तस्राव होता था। कभी सूजन और मवाद बनने की क्रिया चालू हो जाती थी। इस पद्धति को अपनानेवाली अधिकतर बहनें पेट-कमर के दर्द से परेशान रहती थीं।

प्लास्टिक लूप के दोषों को देखते हुए उसके स्थान पर इधर कुछ वर्षों से 'कॉपर टी' का उपयोग चालू हुआ है। दो-तीन वर्ष बाद इसे बदलना पड़ता है। मगर यह भी विश्वसनीय और निर्दोष साबित नहीं हुआ है। इसलिए अब इसकी चर्चा भी बन्द है।

४. रजकण के बनने पर रोक

अण्डाशय प्रतिमाह एक के बाद एक दो तरह के रस इस्ट्रोजेन व प्रोजेस्टरोन बनाता है। जिनकी मदद से गर्भाशय गर्भ के स्वागत की तैयारी करता है। गर्भावस्था में गर्भाशय में बनी गद्दी भी प्रोजेस्टरोन बनाती है। इस रस की रक्त में हुई वृद्धि नये रजकण के बनने पर रोक लगाती है। इसी तथ्य का सहारा लेकर इन दो रसों की गोलियों का प्रयोग गर्भ-निरोध के लिए करते हैं। यह गोली मासिक चालू होने के ५वें दिन से २१वें दिन तक लेना पड़ता है। गोली बन्द करने पर ६-७ दिनों में मासिक रक्तस्राव दिखायी देता है। बाजार में ८० गोली के पत्ते मिलते हैं। गोली प्रतिदिन लेनी होती है। २१ गोलियों में दवा होती है और शेष सादी गोली रहती है।